सिएटल, अमेरिका
१ सितम्बर, २००४

संदेश संख्या – ७३

अद्वैतामृतवर्षिणी

(संदेश ७२ से आगे)

इस संदेश में २४ श्लोकों के माध्यम से संदेश ७१ में सूचीबद्ध प्रक्रिया संख्या ८ से १० को प्रस्तुत किया गया है । अध्याय एवं श्लोक संख्या को पूर्ववत् इंगित किया गया है ।

८. प्रबोध का प्रकाश अर्थात् परस्पर विरोधी युग्मों से मुक्ति

३.३८ जिस तरह अग्नि धुएँ से ढँक जाती है, दर्पण धूल से ढँक जाता है, उसी तरह स्मृति और बुद्धि मन और अहंकार से ढँकी रहती है ।

३.४३ बुद्धि से परे प्रबोध का प्रकाश पाकर अर्थात् अहंकार के सीमित आयामों के परे अस्तित्व के सार की झलक पाकर व्यक्ति आकांक्षा, अवसाद तथा भ्रांति रूपी शत्रु को जीत लेता है, जिसे जीतना वस्तुतः कठिन है।

२.१५ जो इन्द्रियजनित प्रत्यक्षबोध में रहता है अर्थात् जिसे वासना आक्रांत नहीं करती और जिसके लिए हर्ष और विषाद एक समान है, वह अमरत्व के लिए योग्य होता है ।

२.३८ सुख–दुःख, लाभ–हानि और जय–पराजय को एक समान समझते हुए दुों और गलत कार्यों के विरूद्ध युद्ध में लग जाओ। इस तरह तुम पाप को प्राप्त नहीं होगे ।

४.३६ यदि तुम सभी पापियों से भी बड़े पापी हो; ज्ञान रूपी नौका (विभेदकारी चित्तकारी के क्षेत्र के बाहर प्रबोध का प्रकाश) द्वारा तुम सभी पापों के पार हो जाओगे ।

६.७ वह जो अस्तित्व के सुगंध को उपलब्ध है और इस तरह जो अहंकार के सीमित–तत्वों को जीतकर शांत हो गया है,
वैसा व्यक्ति सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख और मान–अपमान में स्थिर रहता है ।

६.९ जो मित्र, सखा और शत्रु के प्रति समान भाव रखता है, जो विरोधियों और बंधुजनों के बीच तटस्थ रहता है, जो अच्छे लोगों और पापियों के बीच निष्पक्ष रहता है, वह सचमुच विशिष्ट है क्योंकि वह सर्वत्र सम–भाव में रहता है ।

५.२० जो ब्रह्म को जानता है और ब्रह्म (सर्वव्यापक चैतन्य) में स्थित है, वह प्रीतिकर को प्राप्त कर प्रसन्न नहीं होता और न ही अप्रीतिकर से सामना होने पर विचलित होता है । उसकी बुद्धि स्थिर तथा भ्रांति से मुक्त होती है ।

९. रहस्यपूर्ण

५.१३ 'अन्यत्व' (अर्थात् चैतन्य) जो शरीर से युक्त है, मन की सभी गतिविधियों (लालसा, आसक्ति, भय और निर्भरता) के प्रति उदासीन और सुखपूर्वक एकाकी रहता है, 'वह' वस्तुतः नवद्वार वाले नगर का शासक है किन्तु 'वह' पूर्णतः अकर्त्ता है (यद्यपि शरीर में सभी गतिविधियाँ 'उसके' साथ युक्त होने के कारण ही संभव होती हैं)। वह मन (विभेदकारी चित्तवृत्ति) की किसी गतिविधि का कारण भी नहीं होता ।

७.४ भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, बुद्धि, मन और अहंकार–ये सभी आठ प्रकार से विभाजित 'मेरा' जड़ (अपरा) प्रकृति है।

७.५ लेकिन चेतन (परा) आयाम को कुछ नहीं करना होता अर्थात् वह इन सबसे (जड़ प्रकृति से) पूर्णतः भिन्न है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड 'इस आयाम' में धारण किया जाता है ।

६.३४ 'इस' (चैतन्य) के प्रति उपलब्ध हो जाओ, 'इस' के प्रति निष्ठावान हो, 'इसके' के प्रति सब कुछ समर्पित कर दो, 'इसे' प्रणाम करो तथा 'इसके' प्रति श्रद्धावान हो, 'इसके' प्रति दृढ़ रहो, 'इसे' ही परम लक्ष्य मानो, 'इससे' युक्त हो जाओ और 'इसके' ही शरणागत हो जाओ ।

५.१७ 'इसमें' तद्रूप हो जाओ, 'इसमें' स्थिर हो जाओ, 'इसके' प्रति निष्ठावान होओ तथा 'इसे' समझो, 'इसके' प्रति जागरूकता द्वारा बुराइयों का त्याग कर दो और इस तरह भ्रांति रूपी मन–अहंकार के जन्म और मृत्यु के चक्र से बाहर आ जाओ।

४.३६ जो श्रद्धावान है तथा प्रत्यक्षबोध को वासना में परिवर्तित नहीं करता, वह 'इसे' प्राप्त करता है और परम शांति में प्रतिष्ठित हो जाता है ।

४.३७ जिस तरह प्रज्वलित अग्नि लकड़ी को भस्म में परिवर्तित कर देती है, उसी तरह 'इस चैतन्य' के प्रति जागरूकता रूपी अग्नि मन और अहंकार के सभी कर्मों को भस्मीभूत (शिव का भस्म) कर देती है ।

५.२० 'यह चैतन्य' (पुरूष) जो सभी त्याग और तप को भोक्ता है, सभी लोकों का महेश्वर है और सभी जीवों का परमप्रिय मित्र है, ऐसे चैतन्य के एक स्फुलिंग को जानकर बुद्धिमान अचल शांति को प्राप्त हो जाता है ।

१०. ज्ञान के लिए ज्ञात का त्याग

४.३३ पदार्थमात्र के संग्रह के त्याग की अपेक्षा ज्ञात का त्याग अधिक श्रेयस्कर है । अपवादरहित सारे कर्मों को तभी पूर्णरूपेण समझा जा सकता है जब ज्ञान होने के लिए ज्ञात का अंत हो जाय अर्थात् प्रत्यक्षबोध को उपलब्ध होने के लिए अतीत के प्रभाव से मुक्त हो जाया जाय ।

४.३४ जानो ! विनम्रता द्वारा, खोज (स्वाध्याय) द्वारा और अभ्यास (क्रिया) द्वारा । केवल अस्तित्व (परम सत्) के प्रत्यक्षदर्शी (सतगुरु) को ही अन्य लोगों को प्रबोध के लिए शिक्षा देनी चाहिए ।

५.१४ प्रभु (चैतन्य) न प्रभुता पाने में रूचि रखता है और न ही किसी सांसारिक कम में । 'वह' इन कर्मों के फल से भी संबद्ध नहीं होता । कर्मफल तो गुण या जड़ प्रकृति द्वारा निर्धारित होते हैं।

५.१५ शून्यता (प्रभु) किसी के भी पाप या अच्छे कर्मों में रूचि नहीं रखती । लोग विभ्रांत हैं क्योंकि प्रबोध (ज्ञान) का आनन्द उधारी जानकारी से आवृत्त है।

५.२१ बाह्य प्रभावों से मुक्त रहकर व्यक्ति जब अन्तर्दृष्टि में ही सुख पाता है तब वह शून्यता (न कि अहंकार) से युक्त होता है और इस तरह अक्षय सुख को प्राप्त होता है ।

६.१८ व्यक्ति जब शून्यता में लीन हो जाता है, उसके चेतना के उपादानों का लय हो जाता है तब वह आसक्ति और लालसा से मुक्त हो जाता है और वह संत कहा जाता है।

६.२० जब चित्तवृत्ति शांत होती है और योगाभ्यास द्वारा निरूद्ध होती है और जब द्रष्टा और दृश्य के बीच विभाजन के बिना शून्यता का दर्शन घटित होता है तब परम संतोष अवतरित होता है ।

६.४७ सभी योगियों में भी जिसने अपना अन्तर–अस्तित्व मुझमें (शून्यता में) विलय कर दिया है, मेरा सम्मान करता है, श्रद्धावान है, वह मेरे (पूर्ण–चैतन्य के) साथ सर्वाधिक युक्त माना जाता है ।